



पर्यावरणीय संरक्षण में लोककलाओं की भूमिका

डॉ. दिलीप कुमार पटेल

शिक्षक शिक्षा विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, हरियाणा

DOI : <https://doi.org/10.5281/zenodo.23260103>

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 21-07-2026

Accepted: 20-08-2026

Published: 25-09-2026

Keywords:

लोककला, पर्यावरणीय संरक्षण, पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक धरोहर, वारली कला, मधुबनी कला, गोंड कला, आदिवासी संस्कृति और जनजातीय कला।

ABSTRACT

वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट एक गंभीर वैश्विक चुनौती के रूप में उभर रहा है, जिसका प्रभाव मानव जीवन, जैव विविधता तथा प्राकृतिक संसाधनों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जल एवं वायु प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन जैसी समस्याएँ पृथ्वी के पारिस्थितिक संतुलन को लगातार प्रभावित कर रही हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए केवल वैज्ञानिक और तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक स्तर पर व्यापक जागरूकता और सहभागिता की आवश्यकता है। इसी संदर्भ में लोककला पर्यावरणीय संरक्षण के एक प्रभावी और सशक्त माध्यम के रूप में उभरकर सामने आती है। लोककला में लोकगीत, लोकनृत्य, भित्ति चित्र, लोकनाटक, कठपुतली कला तथा हस्तशिल्प जैसी विविध विधाएँ शामिल हैं, जो समाज की परंपराओं, मान्यताओं और जीवनशैली से गहराई से जुड़ी होती हैं। ये कलाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती हुई पारंपरिक ज्ञान, विशेष रूप से पर्यावरणीय समझ और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित रखती हैं। लोककला की विशेषता यह है कि यह जटिल विषयों को भी सरल, रोचक और भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करती है, जिससे पर्यावरणीय संदेश आम जनमानस तक प्रभावी रूप से पहुँचते हैं। यह शोध विशेष रूप से वारली कला, मधुबनी कला, और गोंड कला के संदर्भ में पर्यावरणीय संरक्षण में लोककला की भूमिका का विश्लेषण करता है। वारली कला में ज्यामितीय आकृतियों के माध्यम से मानव और प्रकृति के सहअस्तित्व

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

को दर्शाया जाता है, मधुबनी कला में सूर्य, चंद्रमा, पेड़-पौधे और जीव-जंतुओं के प्रतीकों के माध्यम से प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना प्रकट होती है, जबकि गोंड कला में बिंदु और रेखाओं के माध्यम से जैव विविधता को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

प्रस्तावना

लोक कला भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जो समाज, संस्कृति और प्रकृति के बीच गहरे संबंध को दर्शाती है। लोक कला केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि पर्यावरणीय चेतना और संरक्षण का एक प्रभावी माध्यम भी है। भारत की विभिन्न लोक कलाएँ जैसे मधुबनी, वारली, गोंड आदि प्रकृति, जैव विविधता, जल, वन, पशु-पक्षी और मानव-प्रकृति संबंधों को चित्रित करती हैं। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, वन विनाश और जैव विविधता के संकट से जूझ रहा है, तब लोक कला के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सामाजिक जागरूकता और सहभागिता बढ़ाई जा सकती है। यह शोध-पत्र लोक कला और पर्यावरण संरक्षण के अंतर्संबंध, भारतीय लोक कलाओं की भूमिका, समकालीन संदर्भ, चुनौतियों और संभावनाओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मानव जीवन का अस्तित्व पर्यावरण पर निर्भर करता है। वायु, जल, भूमि, वनस्पति और जीव-जंतु जीवन के आधार हैं। किंतु औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, उपभोक्तावाद और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने पर्यावरणीय संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई, जल संकट और जैव विविधता का क्षरण आज वैश्विक चिंता के विषय हैं।

ऐसे समय में पर्यावरणीय संरक्षण के लिए केवल वैज्ञानिक और तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं, सामाजिक और सांस्कृतिक माध्यमों की भी आवश्यकता है। लोक कला एक ऐसा माध्यम है जो समाज के हृदय तक पहुँचकर प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न कर सकती है।

भारतीय लोक कलाएँ सदियों से प्रकृति के साथ मानव के सह-अस्तित्व का संदेश देती रही हैं। इनमें पेड़, पौधे, नदियाँ, पर्वत, पशु-पक्षी और ऋतुचक्र प्रमुख विषय रहे हैं। लोक कलाकारों ने प्राकृतिक रंगों और स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते हुए पर्यावरण-अनुकूल कला परंपराएँ विकसित कीं।

वारली कला

वारली कला भारत की अत्यंत प्राचीन और प्रसिद्ध जनजातीय लोक चित्रकलाओं में से एक है। इसका उद्भव मुख्यतः महाराष्ट्र के पालघर, ठाणे और आसपास के क्षेत्रों में रहने वाली वारली जनजाति द्वारा हुआ। यह कला प्रकृति, मानव और जीव-जंतुओं के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध को सरल रेखाओं और ज्यामितीय आकृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त

करती है। वारली चित्रों में जंगल, वृक्ष, पशु-पक्षी, जल स्रोत, कृषि, सूर्य, चंद्रमा और सामुदायिक जीवन के दृश्य प्रमुख रूप से चित्रित होते हैं, जो पर्यावरणीय संतुलन और सह-अस्तित्व के संदेश को दर्शाते हैं। वर्तमान समय में जब जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का हास, वन विनाश और प्रदूषण जैसी समस्याएँ गंभीर रूप ले चुकी हैं, तब वारली कला पर्यावरणीय संरक्षण के लिए एक प्रभावशाली सांस्कृतिक माध्यम बन सकती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वारली कला की उत्पत्ति, विशेषताएँ, पर्यावरणीय प्रतीकों, संरक्षण में इसकी भूमिका, समकालीन प्रासंगिकता और चुनौतियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

पर्यावरण मानव जीवन का मूल आधार है। स्वच्छ वायु, जल, वन, भूमि और जैव विविधता पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। किंतु औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पर्यावरणीय संकट को बढ़ा दिया है। आज जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जल प्रदूषण और जैव विविधता का क्षरण वैश्विक चिंता के विषय हैं।

इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल वैज्ञानिक उपाय पर्याप्त नहीं हैं; समाज में पर्यावरणीय चेतना विकसित करना भी उतना ही आवश्यक है। लोक कला, विशेषकर वारली कला, इस दिशा में एक सशक्त माध्यम है क्योंकि यह प्रकृति और मानव के सह-अस्तित्व की परंपरा को जीवंत रूप में प्रस्तुत करती है।

वारली कला आदिवासी जीवन और प्रकृति के बीच गहरे संबंध का प्रतिबिंब है। यह कला न केवल सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि पर्यावरणीय संरक्षण के मूल्यों को भी सशक्त रूप से व्यक्त करती है।

वारली कला और प्रकृति का संबंध

वारली कला का प्रकृति से अत्यंत गहरा और अभिन्न संबंध है। यह कला प्रकृति-आधारित जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करती है, जिसमें मानव को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका एक अभिन्न अंग माना गया है। वारली जनजाति का जीवन जंगल, पहाड़, नदियों, खेतों और पशु-पक्षियों पर आधारित रहा है, इसलिए उनके चित्रों में प्राकृतिक तत्वों का प्रमुख स्थान है। वृक्ष और जंगल जीवन, आश्रय, समृद्धि तथा पारिस्थितिक संतुलन के प्रतीक माने जाते हैं।

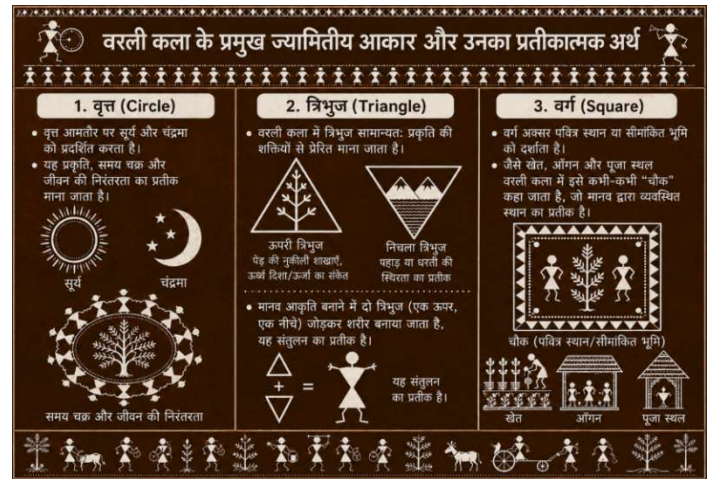
पशु-पक्षियों, जैसे हिरण, पक्षी, मछली तथा अन्य जीवों का चित्रण जैव विविधता और सभी जीवों के सह-अस्तित्व का संदेश देता है। कृषि से जुड़े दृश्य, जैसे बुवाई, कटाई, सिंचाई और श्रम, मानव तथा प्रकृति के सहयोग और परस्पर



निर्भरता को दर्शाते हैं। सूर्य और चंद्रमा को प्राकृतिक ऊर्जा, समय और ऋतु-चक्र के प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता है, जो जीवन की निरंतरता और प्रकृति के संतुलन का संकेत देते हैं। इसी प्रकार नदियाँ, तालाब, वर्षा और अन्य जल स्रोत जीवन के आधार तथा जल संरक्षण के महत्व को प्रदर्शित करते हैं।

वारली चित्रकला में विशेष रूप से 'तरपा नृत्य' का चित्रण मानव, समाज और प्रकृति के बीच सामंजस्य तथा सामुदायिक एकता का प्रतीक माना जाता है। इस कला में प्रयुक्त सामग्री भी प्रकृति के प्रति सम्मान को दर्शाती है। चित्रों की पृष्ठभूमि लाल या गेरुए रंग की मिट्टी से बनाई जाती है, जबकि सफेद रंग चावल के आटे के घोल और प्राकृतिक गोंद से तैयार किया जाता है, जिससे पर्यावरण को कोई हानि नहीं होती। इस प्रकार वारली कला केवल एक लोक चित्रकला नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता के सम्मान, प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग तथा सतत विकास की भावना का सशक्त माध्यम है। यह कला हमें प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने और उसके संरक्षण के महत्व का संदेश देती है।

- **वृत्त:** वृत्त आमतौर पर सूर्य और चंद्रमा को प्रदर्शित करता है। यह प्रकृति, समय चक्र और जीवन की निरंतरता का प्रतीक माना जाता है।
- **त्रिभुज:** वारली कला में त्रिभुज सामान्यतः प्रकृति की शक्तियों से प्रेरित माना जाता है। ऊपरी त्रिभुज अक्सर पेड़ की नुकीली शाखाएँ या ऊर्ध्व दिशा/ऊर्जा का संकेत माना जा सकता है। निचला त्रिभुज पहाड़ या धरती की स्थिरता को दर्शा सकता है। लेकिन खास तौर पर मानव आकृति बनाने में दो त्रिभुज (एक ऊपर, एक नीचे) जोड़कर शरीर बनाया जाता है, यह संतुलन का प्रतीक है।
- **वर्ग:** वर्ग अक्सर पवित्र स्थान या सीमांकित भूमि को दर्शाता है, जैसे खेत, आँगन और पूजा स्थल वारली कला में इसे कभी-कभी “चौक” कहा जाता है, जो मानव द्वारा व्यवस्थित स्थान का प्रतीक है।



पर्यावरणीय संरक्षण में वारली कला की भूमिका

वारली कला एक प्रकृति-आधारित लोक कला है, जो पर्यावरणीय संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन और सतत विकास के संदेश को प्रदर्शित करती है। इस कला में वृक्ष, कृषि, नदियाँ, पर्वत, सूर्य, चंद्रमा, पशु-पक्षी और मानव जीवन के बीच सह-अस्तित्व को दर्शाया जाता है। ये चित्र यह संदेश देते हैं कि मानव जीवन प्रकृति पर निर्भर है और उसके संरक्षण के बिना सतत विकास संभव नहीं है। वारली समुदाय प्रकृति को केवल संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि जीवनदाता और पूजनीय तत्व के रूप में देखता है। इसलिए उनकी कला में पर्यावरण संरक्षण का विचार स्वाभाविक रूप से समाहित है।

वर्तमान समय में वारली कला का उपयोग पर्यावरण जागरूकता, वृक्षारोपण अभियान, स्वच्छता अभियान, जलवायु परिवर्तन जागरूकता तथा जैव विविधता संरक्षण के प्रचार-प्रसार में किया जा रहा है। इसके माध्यम से समाज में पर्यावरणीय शिक्षा और सतत जीवनशैली को बढ़ावा मिलता है।

वारली कला स्थानीय और प्राकृतिक रंगों तथा पारंपरिक सामग्रियों के उपयोग को बढ़ावा देती है, चावल का घोल, मिट्टी और प्राकृतिक रंगों का उपयोग पर्यावरण संरक्षण का प्रत्यक्ष उदाहरण है। जिससे पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव कम पड़ता है। यह कला सतत जीवनशैली, पारिस्थितिक संतुलन और प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करती है।

मधुबनी कला

भारतीय लोककलाएँ केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे समाज की परंपराओं, मान्यताओं और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण को भी प्रतिबिंबित करती हैं। मधुबनी कला, जिसे मिथिला चित्रकला के नाम से भी जाना जाता है, भारत की एक प्रसिद्ध लोककला है, जिसका उद्भव बिहार के मिथिला क्षेत्र में हुआ। यह कला प्रकृति, पर्यावरण और मानव जीवन के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध को दर्शाती है। मधुबनी चित्रों में वृक्ष, पशु-पक्षी, सूर्य, चंद्रमा, नदियाँ, पर्वत तथा जैव विविधता के विभिन्न रूपों का चित्रण किया जाता है, जो पर्यावरणीय संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन के महत्व को रेखांकित करते हैं। वर्तमान समय में, जब विश्व जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास और पर्यावरण प्रदूषण जैसी गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है, तब मधुबनी कला पर्यावरणीय जागरूकता और संरक्षण का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मधुबनी कला के पर्यावरणीय पहलुओं, उसके प्रतीकों और पर्यावरण संरक्षण में उसकी भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

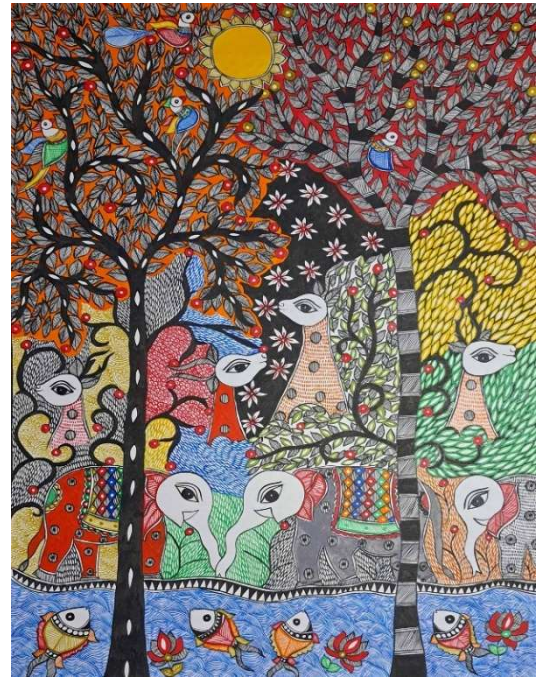
मधुबनी कला केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि प्रकृति, संस्कृति और समाज के बीच गहरे संबंध का प्रतीक है। मधुबनी चित्रों में वृक्ष, जल, सूर्य, चंद्रमा, पशु-पक्षी, मछली, कमल तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों का व्यापक चित्रण मिलता है, जो पर्यावरणीय चेतना और संरक्षण के मूल्यों को व्यक्त करते हैं। वर्तमान समय में जलवायु

परिवर्तन, जैव विविधता के हास, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण पर्यावरणीय संकट गहराता जा रहा है। ऐसे में मधुबनी जैसी लोक कलाएँ पर्यावरणीय संरक्षण के लिए सांस्कृतिक और शैक्षिक माध्यम के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती हैं।

मधुबनी कला की विभिन्न शैलियाँ, जैसे **भरनी, कचनी, तांत्रिक, गोदना और कोहबर**, इसकी विविधता और समृद्धि को प्रदर्शित करती हैं। पारंपरिक रूप से मधुबनी चित्रकला प्राकृतिक रंगों और स्थानीय सामग्रियों का उपयोग करके बनाई जाती थी, जो इसे पर्यावरण-अनुकूल कला बनाती है। इसके अतिरिक्त, यह कला सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय मूल्यों को अभिव्यक्त करने का एक प्रभावी माध्यम है। इस प्रकार, मधुबनी कला अपनी कलात्मक सुंदरता, सांस्कृतिक महत्व, प्रतीकात्मकता और प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण के कारण भारतीय लोककला की एक विशिष्ट और अमूल्य धरोहर मानी जाती है।

मधुबनी कला और प्रकृति का संबंध

मधुबनी कला और प्रकृति का संबंध अत्यंत गहरा और अभिन्न है। बिहार के मिथिला क्षेत्र में विकसित इस लोककला में प्रकृति को जीवन, संस्कृति और आध्यात्मिक चेतना का आधार माना गया है। मधुबनी कला की सबसे प्रमुख विशेषता इसका **प्रकृति-केंद्रित स्वरूप** है, जिसमें सूर्य, चंद्रमा, वृक्ष, पुष्प, नदियाँ, मछलियाँ, पशु-पक्षी और अन्य प्राकृतिक तत्वों का व्यापक रूप से चित्रण किया जाता है, जो मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध को दर्शाते हैं। इस कला में प्रकृति को केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि जीवनदायिनी और पूजनीय शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। विशेष रूप से पीपल, बरगद और तुलसी जैसे वृक्षों को जीवन, समृद्धि और पर्यावरणीय संतुलन का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार, मछलियाँ उर्वरता और जल संसाधनों की समृद्धि का प्रतिनिधित्व करती हैं,



जबकि मोर, पक्षी और अन्य जीव-जंतु जैव विविधता और पारिस्थितिक संतुलन के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। मधुबनी कला में सूर्य और चंद्रमा को ऊर्जा, समय चक्र और जीवन की निरंतरता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता है। इस कला की एक प्रमुख विशेषता प्राकृतिक रंगों और स्थानीय संसाधनों का उपयोग है, जो पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली को बढ़ावा देता है। मधुबनी चित्रकला यह संदेश देती है कि मानव और प्रकृति एक-दूसरे के पूरक हैं तथा पर्यावरण संरक्षण के बिना सतत विकास संभव नहीं है। वर्तमान समय में, जब पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, मधुबनी कला पर्यावरणीय जागरूकता, प्रकृति संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन

के महत्व को समझाने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है। बल्कि प्रकृति के प्रति सम्मान, संरक्षण और पर्यावरणीय चेतना का एक सशक्त प्रतीक भी है।

मधुबनी कला में चित्र के किसी भी भाग को खाली न छोड़ने की एक विशेष पारंपरिक परंपरा रही है। कलाकार चित्र की प्रत्येक जगह को रेखाओं, फूल-पत्तियों, वृक्षों, पशु-पक्षियों, ज्यामितीय आकृतियों तथा अन्य सजावटी तत्वों से भरते हैं। इसका संबंध मधुबनी कला के प्रकृति-प्रेम, सांस्कृतिक परंपराओं और धार्मिक आस्थाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक खाली स्थान को जीवन, ऊर्जा और सुंदरता से भरने का प्रयास किया जाता है। चित्र में स्थान को पूर्ण रूप से भरना अनंतता, पूर्णता और संतुलन का प्रतीक माना जाता है। पारंपरिक मान्यता के अनुसार, शुभ प्रतीकों और प्राकृतिक आकृतियों से भरी हुई जगहें सकारात्मक ऊर्जा, शांति और शुभता का भाव उत्पन्न करती हैं तथा नकारात्मकता को दूर करने का प्रतीकात्मक संदेश देती हैं। यह परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और इसमें समृद्धि, शांति, खुशहाली तथा मंगलकामना की भावना दिखाई देती है। इस प्रकार, मधुबनी कला की प्रत्येक रेखा, आकृति और रंग में जीवन, प्रकृति, संस्कृति और आस्था की अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

पर्यावरणीय संरक्षण में मधुबनी कला की भूमिका

मधुबनी चित्रों में पेड़-पौधों और वनस्पतियों को विशेष महत्व दिया जाता है। कलाकार वृक्षों को जीवन, समृद्धि और प्रकृति की निरंतरता का प्रतीक मानते हैं। इस प्रकार चित्रों में वृक्षों का बार-बार चित्रण लोगों को पेड़ लगाने और उनकी रक्षा करने की प्रेरणा देता है। इसी प्रकार मछली, पक्षी, हाथी, हिरण, कछुआ और अन्य जीव-जंतुओं के चित्रण के माध्यम से जैव-विविधता और वन्यजीवों के प्रति संवेदनशीलता विकसित होती है।



मधुबनी कला में प्राकृतिक रंगों के प्रयोग की परंपरा भी पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पारंपरिक रूप से कलाकार फूलों, पत्तियों, पौधों, मिट्टी, खनिजों तथा अन्य प्राकृतिक स्रोतों से रंग तैयार करते रहे हैं। इससे स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान के बीच संबंध दिखाई देता है तथा रासायनिक रंगों पर निर्भरता को कम करने की संभावना बनती है।

इस प्रकार, मधुबनी कला लोकपरंपरा, प्राकृतिक संसाधनों, जैव-विविधता, सांस्कृतिक विरासत और पर्यावरणीय चेतना को एक साथ जोड़ती है। यह कला हमें यह संदेश देती है कि मानव जीवन प्रकृति से अलग नहीं है, बल्कि प्रकृति

के साथ उसके गहरे संबंध पर आधारित है। इसलिए मधुबनी कला को केवल एक पारंपरिक चित्रकला के रूप में नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और सतत जीवन-पद्धति की लोक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जा सकता है।

गोंड कला

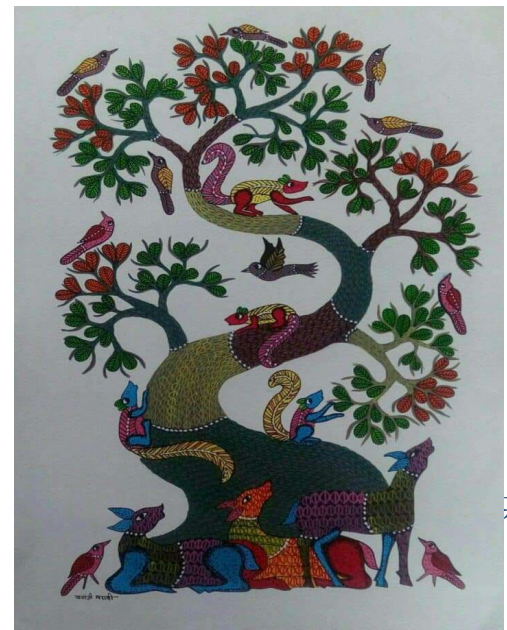
गोंड मध्य प्रदेश की महत्वपूर्ण जनजातीय कला में से एक है। इसे चित्र के रूप में निर्माण करने के लिए कई रंगीन बिंदुओं और रेखाओं का प्रयोग करने की शैली है। गोंड पेंटिंग गोंड जनजाति से संबंधित है, जिसमें अलग-अलग अनोखे, रचनात्मक चित्रांक, हस्ताक्षर पैटर्न और रंग संयोजन होते हैं। पारंपरिक रूप से गोंड पेंटिंग घर की दीवारों पर सजावट के लिए की जाती थी। यह हमारी धरोहर के खजानों में से एक है, जो संस्कृति को उजागर करती है।

गोंड कला भारतीय लोक एवं आदिवासी कला की एक महत्वपूर्ण परंपरा है, जिसका उद्भव मुख्यतः मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले गोंड जनजातीय समुदाय के बीच हुआ। यह कला प्रकृति, जीव-जंतुओं, वृक्षों, नदियों और मानव जीवन के बीच गहरे संबंध को अत्यंत जीवंत और रंगीन रूप में प्रस्तुत करती है। गोंड चित्रकला में जैव विविधता, प्राकृतिक ऊर्जा, सह-अस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन के संदेश स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

गोंड कला में **महुआ वृक्ष** को "जीवन वृक्ष" (Tree of Life) माना जाता है। इसके फूल, फल, बीज और पत्तियाँ जीवन, समृद्धि और निरंतरता का प्रतीक हैं। द्रविड़ परंपरा में **“गोंड”** शब्द **“कोंड” (Kond)** से व्युत्पन्न माना जाता है, जिसका अर्थ **“हरे-भरे पर्वत” (Green Mountains)** है। यह नामकरण गोंड समुदाय के उन प्राकृतिक और पर्वतीय क्षेत्रों में निवास को दर्शाता है, जहाँ घने वन और समृद्ध जैव-विविधता पाई जाती है। गोंड समुदाय को कई स्थानों पर **“कोई” (Koi)** अथवा **“कोइतूर” (Koitur)** के नाम से भी जाना जाता है। ये हरे-भरे पर्वतीय क्षेत्र प्रकृति की अनुपम सुंदरता का प्रतीक हैं और गोंड समुदाय के लिए प्रेरणा, आजीविका तथा सांस्कृतिक पहचान के प्रमुख स्रोत रहे हैं। यही कारण है कि गोंड चित्रकला में प्रकृति, वन्यजीवन, वृक्ष, पक्षी, पशु तथा प्राकृतिक शक्तियों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। गोंड कलाकार अपने चित्रों के माध्यम से मनुष्य और प्रकृति के बीच गहरे संबंध को अभिव्यक्त करते हैं तथा पर्यावरण के प्रति सम्मान और सह-अस्तित्व की भावना को उजागर करते हैं।

गोंड कला और प्रकृति का संबंध

गोंड चित्रकला में पौधों, पशुओं, पक्षियों, प्रकृति, लोककथाओं तथा डैश, बिंदुओं, वक्र रेखाओं आदि से बने भराव रूपांकनों का सुंदर संयोजन देखने को मिलता है। परंपरागत रूप से इस कला में प्रयुक्त रंग



प्राकृतिक स्रोतों से तैयार किए जाते थे। काला रंग मिट्टी से, पीला रंग नदी के किनारों की मिट्टी से तथा सफेद रंग कैल्सियम युक्त चट्टानों से प्राप्त किया जाता था। घरों की दीवारों पर चित्र बनाने के लिए कोयला और चूना भी माध्यम के रूप में उपयोग किए जाते थे। चित्र निर्माण की प्रक्रिया में सबसे पहले आकृति की बाहरी रूपरेखा बनाई जाती है और उसे काले रंग से भरा जाता है। रंग सूख जाने के बाद उसमें विभिन्न प्रकार के बिंदु, रेखाएँ और सजावटी पैटर्न बनाए जाते हैं, जो चित्र को विशिष्ट सौंदर्य प्रदान करते हैं।

यह कला प्रकृति के साथ गहरे और अभिन्न संबंध को प्रदर्शित करती है। गोंड समुदाय का मानना है कि प्रकृति का प्रत्येक तत्व, जैसे वृक्ष, पशु-पक्षी, नदियाँ, पर्वत, सूर्य और चंद्रमा, जीवन और ऊर्जा का स्रोत है।

गोंड कलाकार अपनी चित्रकला में पेड़-पौधों, वन्यजीवों, पक्षियों, मछलियों, नदियों और ऋतु परिवर्तन को प्रमुखता से दर्शाते हैं। विशेष रूप से "जीवन वृक्ष" (Tree of Life) गोंड कला का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है, जो जीवन, समृद्धि, संतुलन और प्रकृति की निरंतरता का प्रतिनिधित्व करता है। गोंड कला में प्रत्येक आकृति को बिंदुओं, रेखाओं और ज्यामितीय पैटर्नों से सजाया जाता है, जो प्रकृति की लय, गति और विविधता को अभिव्यक्त करते हैं।

वर्तमान समय में, जब पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, गोंड कला प्रकृति संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन और सतत विकास के महत्व को समझाने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है। इस प्रकार, गोंड कला केवल एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि प्रकृति के प्रति सम्मान, संरक्षण और पर्यावरणीय चेतना का एक सशक्त प्रतीक भी है।

गोंड कला में प्रकृति और पर्यावरण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस कला में विभिन्न प्राकृतिक तत्वों को प्रतीकात्मक रूप से चित्रित किया जाता है, जो पर्यावरणीय संतुलन, जैव विविधता और मानव-प्रकृति के सह-अस्तित्व को दर्शाते हैं। गोंड कला का सबसे प्रमुख प्रतीक "जीवन वृक्ष" (Tree of Life) है, जो जीवन, विकास, समृद्धि, निरंतरता और प्रकृति के साथ मानव के गहरे संबंध का प्रतिनिधित्व करता है। वृक्ष को ऊर्जा और पारिस्थितिक संतुलन के स्रोत के रूप में चित्रित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, गोंड चित्रकला में हिरण, हाथी, मछली, मोर, पक्षी तथा अन्य जीव-जंतुओं का व्यापक चित्रण मिलता है, जो जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक जीव प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का प्रतीक माना जाता है। गोंड कला में नदियों, तालाबों और जल स्रोतों को भी विशेष स्थान दिया गया है, क्योंकि जल को जीवन का आधार और पवित्र तत्व माना जाता है। इसी प्रकार, पर्वत और वन प्राकृतिक आवास, जैव विविधता संरक्षण और पर्यावरणीय संतुलन के प्रतीक के रूप में चित्रित किए जाते हैं। इस प्रकार, गोंड कला न केवल एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, बल्कि प्रकृति संरक्षण, पर्यावरणीय चेतना और सतत जीवनशैली के मूल्यों को भी प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करती है।

पर्यावरणीय संरक्षण में गोंड कला की भूमिका

गोंड कला मध्य भारत की एक प्रमुख जनजातीय कला परंपरा है, जिसका संबंध विशेष रूप से गोंड समुदाय की सांस्कृतिक जीवन-शैली, प्रकृति और पारंपरिक ज्ञान से है। गोंड कला में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदियाँ, पहाड़, सूर्य, चंद्रमा और विभिन्न प्राकृतिक तत्वों को प्रमुखता से चित्रित किया जाता है। इस कला के माध्यम से प्रकृति को केवल चित्र का विषय नहीं माना जाता, बल्कि उसे मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा और जीवंत शक्ति माना जाता है।



गोंड कला में मानव जीवन और प्रकृति के बीच संबंध को बार-बार अभिव्यक्त किया जाता है। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष और अन्य प्राकृतिक तत्वों को एक ही दृश्य में प्रस्तुत करके यह बताया जाता है कि सभी जीव एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इससे मानव-केंद्रित दृष्टिकोण के स्थान पर प्रकृति-केंद्रित और सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने में सहायता मिलती है।

गोंड कला स्थानीय संस्कृति, परंपराओं और प्राकृतिक परिवेश को सुरक्षित रखने में भी योगदान देती है। जब किसी समुदाय की कला और संस्कृति में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान मिलता है, तो प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा की भावना भी मजबूत होती है। इस प्रकार सांस्कृतिक संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

निष्कर्ष

वारली कला केवल एक आदिवासी लोक कला नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने का दर्शन है। यह मानव और पर्यावरण के बीच गहरे संबंध को दर्शाती है तथा पर्यावरणीय संरक्षण के लिए समाज को प्रेरित करती है। यह कला हमें सिखाती है कि प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व ही सतत भविष्य का आधार है।

मधुबनी कला भारतीय सांस्कृतिक विरासत की एक अमूल्य धरोहर है, जो प्रकृति और मानव जीवन के बीच गहरे संबंध को अभिव्यक्त करती है। यह कला केवल सौंदर्य अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि पर्यावरणीय संरक्षण, जैव विविधता, पारिस्थितिक संतुलन और सतत विकास के मूल्यों को भी प्रोत्साहित करती है। वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों के संदर्भ में मधुबनी कला का महत्व और अधिक बढ़ गया है। इसके माध्यम से समाज में पर्यावरणीय चेतना विकसित की जा सकती है तथा प्रकृति संरक्षण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जा सकता है। अतः मधुबनी कला को पर्यावरण शिक्षा और संरक्षण कार्यक्रमों से जोड़कर सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।



गोंड कला केवल एक लोक कला नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन का दर्शन है। यह मानव और पर्यावरण के बीच गहरे संबंध को दर्शाती है तथा पर्यावरणीय संरक्षण के लिए प्रेरणा देती है। वर्तमान पर्यावरणीय संकट के समय गोंड कला को शिक्षा, जागरूकता और सांस्कृतिक संरक्षण के माध्यम के रूप में अपना अत्यंत आवश्यक है। यह कला हमें सिखाती है कि प्रकृति के साथ संतुलित संबंध ही सतत भविष्य का आधार है।

संदर्भ

- ललित कला अकादमी। (2018)। *भारत की जनजातीय एवं लोक कला परंपराएँ*। नई दिल्ली :ललित कला अकादमी।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT)। (2022)। *भारत की जीवंत शिल्प परंपराएँ* (कक्षा XI, ललित कला)। नई दिल्ली :NCERT।
- एल्विन, वी) .1958)। *मध्य भारत की जनजातीय कला*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (IGNCA)। *वारली चित्रकला परंपरा का दस्तावेजीकरण*। नई दिल्ली :IGNCA।
- घोष, ए. (2011)। *पारंपरिक भारतीय लोक एवं जनजातीय कला रूप*। नई दिल्ली: संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार।
- आर्चर, डब्ल्यू. जी. (1949)। *मैथिल चित्रकला*। लंदन: विक्टोरिया एंड अल्बर्ट म्यूज़ियम।
- जैन, जे. (1998)। *मधुबनी चित्रकला*। नई दिल्ली: मैपिन पब्लिशिंग।
- ब्राउन, आर) .2006)। *भारतीय कला एवं संस्कृति*। नई दिल्ली :ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- गुप्ता, ए) .2021)। *दृश्य कला एवं पर्यावरणीय जागरूकता*। *जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट*, 15(3), 45–62।
- संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार। (2023)। *भारत की पारंपरिक लोक एवं जनजातीय कलाएँ*।
- शर्मा, आर) .2021)। “ भारत में लोक कला परंपराएँ एवं पर्यावरणीय जागरूकता।” *इंडियन जर्नल ऑफ कल्चरल स्टडीज*, 15(2), 45–59।
- सिंह, के) .2015)। *भारत में लोक कला एवं पर्यावरणीय जागरूकता*। नई दिल्ली :कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग।
- झांगबिन, जेड) .2024)। बीजिंग में कला पाठ्यक्रम में पर्यावरणीय जागरूकता को एकीकृत करके कला शिक्षा के लिए अभिनव दृष्टिकोण। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च इन प्रोग्रेसिव एजुकेशन एंड डेवलपमेंट*, 13(1), 2075–2082।
- संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार। (2023)। *भारत की पारंपरिक लोक एवं जनजातीय कलाएँ*।
- <https://scert.cg.gov.in/>
- <https://indianfolkart.org>



- <https://ncert.nic.in/textbook/pdf/khvt104.pdf>
- <https://www.iksindia.org>
- <https://lalitkala.gov.in/>
- <https://ignca.gov.in/top-folk-art/>